पानी बचाओ अभियान और घर में शौचालय

प्रतिदिन प्रातः आठ बजे हिन्दी समाचारों के पूर्व आकाशवाणी से एक विज्ञापन प्रसारित किया जाता है जिसमें कमला नामक महिला घर में शौचालय बनवाने के लिए विभिन्न तर्कों से पति को मनाती है। कुछ ऐसा संयोग है कि जब रेडियो पर उक्त विज्ञापन घर में शौचालय के लाभ गिना रहा होता है तो हाथ में दैनिक भास्कर होता है जिसमें पानी बचाओ अभियान के पक्ष में कुछ–ना–कुछ छपा होता है। सतही तौर पर तो दैनिक भास्कर का अभियान और भारत सरकार का विज्ञापन, दोनों अच्छे प्रतीत हाते हैं तथा उनमें कोई विरोधाभास नहीं दिखता। पर यदि गहराई से देखें तो एक अलग तस्वीर उभरती है।

एक मोटे गणित के अनुसार खेत में लोटा लेकर जाने पर शौच के लिए एक बार में मात्र एक लिटर पानी का प्रयोग होता है तथा घर में बने आधुनिक शौचालय में कम से कम दस लिटर पानी का उपयोग होता है। यदि हम एक छोटा गाँव लें जिसकी जनसंख्या एक हजार है और यदि यह मान लिया जाए कि गाँव का प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन औसत डेढ़ बार शौचक्रिया करता है तो उस गाँव को केवल शौच हेतु घर में बने शौचालयों में प्रतिदिन पंद्रह हजार लिटर से अधिक जल की आवश्यकता होगी। इसके विपरीत खेत में शौच करने पर मात्र पंद्रह सौ लिटर पानी से काम चल जाएगा।

समस्या केवल दस गुना जल के उपयोग की नहीं है। खेत में शौच करने पर मल–मूत्र सौर ऊर्जा से विखंडित होकर खेत की मिट्टी के साथ मिलकर उर्वरक का कार्य करता है और जो थोड़ा सा जल प्रयोग किया जाता है वह भी भूमि में समा जाता है। इसके ठीक विपरीत घर में शौच करने पर पूरे गाँव का मल–मूत्र नालियों से या सेप्टिक टैंकों में एकत्र कर लिया जाता है। आदर्श स्थिति तो यह है कि एकत्र किये गये दूषित जल को साफ कर उससे जैविक खाद अलग कर शुद्ध जल को किसी नदी में प्रवाहित किया जाए। पर जमीनी सच्चाई यह है कि ऐसी व्यवस्था पूरे भारत में किसी बड़े शहर में भी सुचारू रूप से काम नहीं कर रही है। साधारणतः पूरे देश में लगभग सर्वत्र मलमूत्रयुक्त जल को बिना किसी शुद्धिकरण के नदी–नालों में बहा दिया जाता है। स्पष्ट है कि दूषित जल को बहाने के लिए कम से कम पाँच गुना अतिरिक्त जल की आवश्यकता होती है। अर्थात एक हजार की आबादी वाले गाँव का जो काम खेत पर जाने से मात्र डेढ़ हजार लिटर से हो रहा था, उसके लिए नब्बे हजार लिटर जल की आवश्यकता पड़ेगी। दूसरे शब्दों में नब्बे लिटर पानी प्रतिदिन प्रति व्यक्ति केवल शौचक्रिया हेतु उपयोग किया जाएगा।

इस गणित को यदि हम एक व्यापक स्वरूप में देखें तो स्थिति की गंभीरता का आभास होगा। नर्मदा और उसमें मिलने वाली समस्त नदियों एवं नालों के आस–पास बसने वाली जनसंख्या एक मोटे अनुमान के अनुसार पाँच करोड़ मानी जा सकती है। यदि इस पूरी जनसंख्या के घर में आधुनिक शौचालय हों तथा जैसी वर्तमान स्थिति है, कोई सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट न हों तो प्रतिदिन शौच हेतु इस जनसंख्या को साढ़े चार सौ करोड़ लिटर पानी की आवश्यकता होगी। इस प्रकार नर्मदा में प्रतिदिन लगभग पच्चीस हजार टन ठोस मल प्रवाहित किया जाएगा। न तो नर्मदा मैया में इतना जल है और न ही इतने अधिक मल को शुद्ध करने की क्षमता। यह निश्चित है कि यदि छत्तीसगढ़ एवं मध्यप्रदेश के प्रत्येक घर में शौचालय बन जाता है तो नर्मदा में इतना मल आएगा कि नर्मदा मैया उसी प्रकार का गंदा नाला बन जाएंगी जैसी पुण्यसलिला यमुना बन गयी हैं।

© All Rights Free

आश्चर्य यह है कि जिन लोगों ने यमुना जैसी पवित्र नदी को गंदा नाला बना दिया, वे अपने अपराध का प्रायश्चित्त करने के स्थान पर मिनरल वाटर की बोतलों से पानी पी–पी कर योजनाएँ बना रहे हैं और पूरे देश की नदियों की हत्या करने के लिए देश के संसाधन झोंक रहे हैं। इसे देश के साथ क्रूर मजाक ही कहा जाना चाहिए कि जब देश का बहुत बड़ा भूभाग सूखे की विभीषिका से जूझ रहा है तथा पानी बचाओ अभियान की गूँज हर ओर सुनाई दे रही है, ऐसे समय में भारत सरकार गाँव–गाँव में घर में शौचालय बनाने को प्रेरित करने हेतु प्रचार कर रही है एवं अनुदान दे रही है।

भारत सरकार के प्रचार में दो मुख्य बिंदु हैं। पहला बिंदु उठाते हुए महिला अपने पति से खेत में शौच पर जाने में आने वाली शर्म की बात करती है। जरा गहराई से देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि विज्ञापन के माध्यम से महिलाओं को यह बताया जा रहा है कि उन्हें खुले में शौच जाने में शर्म आनी चाहिए। यह एक सांस्कृतिक हमला है जिसके माध्यम से मध्ययुग की यूरोपीय ईसाई संस्कृति को भारत के गावों में स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है। मध्ययुगीन ईसाई धर्म के अनुसार मानव देह पाप से जन्म लेती है और पाप का भंडार है, अतः मानव देह को देखना भी पाप है। उस काल में चिकित्सक प्रसव कराते हुए भी महिला के पेट को देखने से बचने के लिए विभिन्न प्रकार के उपकरणों का उपयोग करते थे जिनसे साधारणतः जच्चा या बच्चे की मत्यु हो जाती थी। उसी काल में सहज मानवीय क्रियाओं जैसे शौच, स्नान, बच्चे को स्तनपान इत्यादि को छुप कर करने की पंरपरा प्रारंभ हुई। भारत में कभी भी इनको करने में शर्म की बात नहीं उठी। पर ऐसा लगता है कि अब भारत सरकार इस देश में मध्ययुगीन यूरोप के धर्म और नैतिक मूल्यों पर आधारित संस्कृति लाना चाहती है।

सरकारी विज्ञापन में दूसरा प्रमुख बिन्दु घर में शौचालय बनाने पर आने वाले खर्च से सम्बन्धित है। कमला कहती है कि यह काम पाँच सौ रूपये से कम में हो जाएगा। स्पष्ट है कि उक्त राशि में केवल शौचालय का खर्च जोड़ा है, किसी भी प्रकार के सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट का खर्च नहीं। मलमूत्र के अन्तिम विसर्जन के किसी भी उपाय के अभाव में यह केवल मलमूत्र को एकत्र करने की योजना है। खर्च की गणना करते समय पर्यावरण एवं सामाजिक पहलुओं को नजरअंदाज करना भारत के विकासविदों की ऐसी भूल है जिसे वे लगातार करते आए हैं।

सच तो यह है कि भूल विकास के मॉडल के सम्बन्ध में है। शहरों में जहाँ आबादी बहुत घनी होती है और खेत में जाना संभव नहीं होता, घर में शौचालय आवश्यक है। यह प्रश्न उठना चाहिए कि नगरीय जीवन की आवश्यकताओं को ग्रामीण परिवेश पर थोपना कितना उचित है। कहा जाता है कि भारत की आत्मा गाँवों में बसती है। आज इस आत्मा को यह निर्णय करना होगा कि क्या वह विकास का दिल्ली मॉडल चाहती है जिसमें पुण्यसलिला यमुना के किनारे खड़े होकर भी मिनरल वाटर की बोतल से पानी पिया जाता है क्योंकि यमुना का जल तो पशुओं के पीने योग्य भी नहीं रहा। या फिर भारत की आत्मा अपनी भौगोलिक तथा पर्यावरणीय परिस्थितियों को ध्यान में रख विकास के एक नये मॉडल को अपनाना चाहती है। एक ओर चमचमाते बाथरूम का ग्लैमर है और दूसरी ओर कलकल बहती जीवनदायी शुद्ध जल से लबालब मातृस्वरूपा नदियाँ हैं। विकास की वैकल्पिक अवधारणाओं के दोराहे पर खड़ा देश विषरूपी मय एवं अमृतरूपी दूध के मध्य किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो रहा है। पर दुःख यह है कि हम सब सम्मोहन में बंधे हैं और कमला के सतही तर्कों का विरोध करने का साहस भी नहीं जुटा पाते।

अनिल चावला

७ मई, २००१